पूँजीवादी साम्राज्य और पर्यावरण-संकट

डॉ० नाज़नीन सआदत
(असिस्टेंट प्रोफ़ेसर [पर्यावरण-विज्ञान], हैदराबाद)
सय्यद सआदतुल्लाह हुसैनी
अनुवाद
मुहम्मद इलियास हुसैन

विषय-सूची

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम
'अल्लाह के नाम से जो बड़ा दयावान अत्यन्त कृपाशील है।'

दो शब्द

साम्राज्यवाद स्वयं में ही एक दमनकारी और शोषण पर आधारित व्यवस्था है। लेकिन जब साम्राज्य पूँजीवादियों के हाथ में चला जाए तो इसका परिणाम तदधिक भयावह हो जाता है। पूँजीवादी साम्राज्य केवल अर्थव्यवस्था पर ही अपना वर्चस्व स्थापित करके शान्त नहीं हो जाता बल्कि उसका शिकार समाज और राजनीति भी होती है और फिर शोषण का एक न समाप्त होनेवाला सिलसिला आरम्भ होता है। उसका शिकार केवल कमज़ोर वर्ग ही नहीं होता बल्कि समूचा वातावरण दूषित होकर रह जाता है। इससे एक ओर सामाजिक भेदभाव उत्पन्न होता है तो दूसरी ओर जलवायु प्रदूषण जैसे संकट उत्पन्न होते हैं। जिसका नतीजा आज हम अपनी आँखों से देख रहे हैं। फिर शिक्षा और रोज़गार इत्यादि के क्षेत्र में सबको समान अवसर न मिल पाने के कारण ग़रीब और अधिक ग़रीब होता चला जाता है तथा पूँजीपति की गाँठ और अधिक मोटी व मज़बूत होती जाती है। उनकी भोग विलासितापूर्ण जीवन शैली के नतीजे में उपभोक्तावाद को बढ़ावा मिलता है। लोगों में उनकी देखा-देखी ज़रूरत से अधिक चीज़ें ख़रीदने की प्रवृत्ति जन्म लेती है। इससे पूँजीवादियों को ब्याज का कारोबार चमकाने का ख़ूब अवसर मिलता है और सामाजिक समस्याएँ विकराल रूप धारण कर लेती हैं।

इस पूरे परिदृश्य में मीडिया बहुत महत्त्वपूर्ण रोल अदा करता है। चूँकि मीडिया पूँजीवाद की कठपुतली होता है इसलिए वह उन्हीं बातों को प्रचारित और प्रसारित करता है जिनमें साम्राज्यवाद का हित होता है।

उपरोक्त परिस्थितियों को सामने रखते हुए जमाअते-इस्लामी हिन्द ने 2008 ई॰ में एक साम्राज्यवाद विरोधी अभियान चलाया था। यह अभियान उन लाखों और करोड़ों लोगों के दिल की आवाज़ थी जो इस पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण का शिकार हैं।

इस अभियान में जहाँ एक ओर पूँजीवादी साम्राज्य के शोषण और अत्याचार के नतीजे में होनेवाली तबाहकारियों से लोगों को परिचित कराया गया था वहीं इस्लाम को वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में पेश भी किया गया था।

इस अभियान के अवसर पर पुस्तिकाओं की एक शृंखला (Series) प्रकाशित की गई थी जिनमें पूँजीवादी साम्राज्य का विभिन्न पहलुओं से अध्ययन कर उससे होनेवाली तबाहियों को सहज रूप में प्रस्तुत किया गया था और इस्लाम को एक वैकल्पिक व्यवस्था के रूप में प्रस्तुत किया था। इन पुस्तिकाओं की महत्ता और लोकप्रियता को देखते हुए इनको पुनः प्रकाशित किया जा रहा है। चूँकि ये पुस्तिकाएँ 2008 ई॰ में लिखी गई थीं इसलिए इनमें तत्कालिक घटनाओं का उल्लेख भी कहीं-कहीं हुआ है। पाठकों से अनुरोध है कि वे इस बात का ध्यान रखें।

हमें आशा है कि ये पुस्तिकाएँ पाठकों के लिए लाभकारी सिद्ध होंगी।

हमारा पूरा प्रयास रहा है कि प्रूफ़ आदि की दृष्टि से इन पुस्तिकाओं में कोई त्रुटि न रहे। लेकिन यदि कहीं कोई त्रुटि पाई जाए तो पाठकगण हमें अवश्य सूचित करें हम उनके आभारी होंगे।

नसीम ग़ाज़ी फ़लाही
सेक्रेट्री
इस्लामी साहित्य ट्रस्ट (दिल्ली)

बिसमिल्लाहिर्रहमानिर्रहीम

(अल्लाह के नाम से जो अत्यन्त दयावान और कृपाशील है ।)

भूमिका

वर्तमान पूँजीवादी साम्राज्य ने इंसानियत को जो विनाशकारी उपहार दिए हैं, उनमें से एक बड़ा उपहार 'पर्यावरण-संकट' है। भौतिकता, लोभ और लालच तथा भोग-विलास पर आधारित आर्थिक जीवन-शैली ने पिछली सदियों में जो पर्यावरणीय संकट पैदा किए हैं, उनका नतीजा है कि आज पूरी इंसानियत के वुजूद को ही गंभीर ख़तरों का सामना है। हमारा वायुमंडल विषाक्त हो चुका है। पानी के भंडार बर्बाद हो चुके हैं। हमारा भोजन तरह-तरह के प्रदूषणों से प्रभावित होने के कारण सेहत देने के बजाए नित नई बीमारियों को बढ़ावा दे रहा है। अगर हालात इसी तरह बिगड़ते रहे तो हम अपनी आनेवाली नस्लों के लिए ऐसी दुनिया छोड़कर जाएँगे कि जिसमें उनके लिए न पौष्टिक आहार उपलब्ध हो, न साफ़ पानी और न साँस लेने के लिए आनन्ददायी (शुद्ध) हवा।

यह बहुत ही आश्चर्यजनक दुर्घटना है कि अब भी, जबकि तबाही के लक्षण पूरी तरह उभरकर सामने आ गए हैं, पूँजीवादी साम्राज्य की समर्थक शक्तियाँ इन्हें दूर करने के लिए तैयार नहीं हैं। यह लोभ और लालच की चरम-सीमा है कि हमारे समय का अत्याचारी और शोषक पूँजीवादी वर्ग इंसानियत की तबाही की क़ीमत पर अपने व्यापार की तरक़्क़ी चाहता है।

पर्यावरण संकट के कारण एक ओर ग्लोबल वार्मिंग, मौसम में बदलाव, वायु-प्रदूषण एवं जल-प्रदूषण जैसे संकट उत्पन्न हो रहे हैं, तो दूसरी ओर प्राकृतिक संसाधनों में बहुत कमी होती जा रही है। तीसरी ओर जीव-जन्तुओं और पेड़-पौधों की अनगिनत प्रजातियाँ लुप्त और समाप्त होती जा रही हैं। इन समस्याओं का दूरगामी नुक़सान तो पूरी इंसानियत को पहुँच रहा है, लेकिन तात्कालिक और सख़्त नुक़सान का सामना तो दुनिया की ग़रीब जनता को है।

पर्यावरण संकट

पर्यावरण संकट वस्तुतः प्रकृति में मौजूद पर्यावरण-सन्तुलन के बिगड़ जाने का नाम है। अल्लाह तआला ने प्रकृति की संरचना में बहुत ही आश्चर्यजनक सन्तुलन क़ायम किया था—

> "उसने आसमान को ऊँचा किया और सन्तुलन क़ायम किया—कि तुम भी तुला (तराज़ू) में सीमा का उल्लंघन न करो।" (क़ुरआन, 55 : 7, 8)

इंसान के हस्तक्षेप के कारण ही प्रकृति का यह संतुलन बिगड़ता जा रहा है और प्रकृति के पर्यावरण में विकृति तथा असंतुलन पैदा हो रहा है।

पर्यावरण-संकट अथवा बिगाड़ को निम्नलिखित अहम बदलाव के संदर्भ में समझा जा सकता है—

1. मौसम-परिवर्तन (Climate Change)
2. वायु-प्रदूषण (Air Pollution)
3. ओज़ोन में छेद (Ozone Depletion)
4. जल-प्रदूषण (Water Pollution)
5. जैव-विविधता (Biodiversity) की हानि
6. ऊर्जा और प्राकृतिक संसाधनों का संकट

मौसम-परिवर्तन (Climate Change)

अल्लाह तआला ने ज़मीन में एक विशेष स्तर पर तापमान क़ायम रखने के लिए प्राकृतिक रूप से एक व्यवस्था कर रखी है। सूरज से ज़मीन को ऊर्जा मिलती है, जिससे ज़मीन गर्म होती है। इस ऊर्जा के एक हिस्से को ज़मीन वापस (Radiate) करती है। वायुमंडल में मौजूद कुछ गैसें इस ऊर्जा के एक हिस्से को सोख लेती हैं। इन गैसों को 'ग्रीनहाउस गैसें' (Greenhouses Gases) कहते हैं। गैसों के द्वारा इस सोखने की क्रिया की वजह से ज़मीन पर गर्मी बरक़रार रहती है। कार्बन डाइऑक्साइड, मीथेन, नाइट्रस ऑक्साइड, हाइड्रोफ़्लोरो कार्बन, सल्फ़र, हेक्साफ़्लोरो ऑक्साइड और जल-वाष्प (पानी की भाप) कुछ महत्त्वपूर्ण ग्रीनहाउस गैसें हैं।

इन ग्रीनहाउस गैसों का रहना ज़रूरी है, क्योंकि इनके अभाव में ज़मीन पर गर्मी बाक़ी नहीं रह सकती थी। अगर कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल में न होती तो ज़मीन पर तापमान गिरकर -18^0C (फ्रीज के डीप फ्रीज़र से भी कम) हो जाता और ज़मीन पर ज़िन्दगी का वुजूद मुश्किल हो जाता।[1]

इन गैसों का उचित अनुपात में होना बहुत ज़रूरी है। प्रकृति में संतुलन बनाए रखने के लिए अल्लाह तआला ने प्राकृतिक रूप से एक व्यवस्था क़ायम की कि अगर जीव-जन्तु साँस लेने के दौरान ऑक्सीजन लेकर कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ते हैं तो पेड़-पौधे इसके विपरीत कार्बन डाइऑक्साइड लेकर ऑक्सीजन छोड़ते हैं। इस तरह प्रकृति में संतुलन बना रहता है।

परन्तु पिछले तीन सौ सालों में उद्योग-धंधों में बेपनाह वृद्धि और प्रगति के कारण एक ओर कार्बन डाइऑक्साइड और दूसरी ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन (निकलना) बढ़ गया है और दूसरी ओर जंगलों की तेज़ गति से क़टाई की वजह से इनके सोखने की क्रिया सुस्त हो गई है। वायुमंडल में एक बार कार्बन और ग्रीनहाउस गैसों का अनुपात बढ़ जाए तो सदियों ये गैसें वायुमंडल में बाक़ी रहती हैं। इसके नतीजे में सूरज की गरमी को सोखने और ज़मीन को गर्म करने की क्रिया भी बढ़ गई है।

जैसा कि कहा गया, अगर कार्बन डाइऑक्साइड ज़मीन पर न होती तो ज़मीन का औसत दर्जा तापमान -18^0C होता। वायुमंडल में इस गैस का प्राकृतिक अनुपात 375 पी पी एम (Parts per Million) है। इस प्राकृतिक अनुपात के नतीजे में ज़मीन का औसत प्राकृतिक तापमान (14^0C) बना रहता है। अंधाधुंध औद्योगिक गतिविधियाँ, वायु-प्रदूषण, मोटरगाड़ियों की अधिकता और जंगलों की कटाई आदि की वजह से यह अनुपात सालाना 2.54 पी पी एम की गति से बढ़ रहा है।[2] अठारहवीं सदी के मध्य से अब तक कार्बन डाइऑक्साइड के अनुपात में 30% और मीथेन के औसत में 148% वृद्धि हुई। वैज्ञानिकों का अनुमान है कि इस गति से 2100 ई॰ तक कार्बन डाइऑक्साइड का अनुपात 541 से 970 पी पी एम हो सकता है।[3]

ज़मीन के औसत तापमान का बढ़ना एक बहुत ही ख़तरनाक प्रक्रिया है। इसके नतीजे में ऐसे चक्र (Cycles) पैदा होने की सम्भावना है, जिससे परिस्थिति बद से बदतर होती जाएगी और ज़िन्दगी का वुजूद मुश्किल हो जाएगा। 1850 ई॰ से पहले पिछले दो हज़ार सालों में औसत तापमान समान रहा (कुछ क्षेत्रों में हुई आंशिक वृद्धि को छोड़कर), लेकिन 1906 से 2005 के बीच औसत तापमान में 0.74°C की वृद्धि हुई। इस सदी के पूर्वार्द्ध में वृद्धि की दर 0.07°C प्रति दशक थी जबकि उत्तरार्द्ध में दोगुनी होकर 0.13°C प्रति दशक हो गई।[4]

तापमान बढ़ने का सीधा-सीधा असर मौसम में बदलाव है, जिसको अब स्पष्ट रूप से महसूस किया जा रहा है। 1990 का दशक मानव-इतिहास में सबसे अधिक गर्म दशक था। 1998, 2002, 2003, 2004 और 2005 मानव-इतिहास के सर्वाधिक गर्म साल थे।[5]

तापमान बढ़ता है तो मौसमों का संतुलन बिगड़ जाता है। गर्मी ज़्यादा होने लगती है। बारिश के समय, कैफ़ियत और बरसने की संख्या बदल जाती है। बाढ़ आती है या सूखा पड़ने लगता है। बर्फ़ीले पहाड़ों की बर्फ़ पिघलने लगती है। समुद्र के पानी का जलवाष्प बनने के कारण ग्रीनहाउस गैसों में और अधिक वृद्धि होती है और यह वृद्धि उस कैफ़ियत को और अधिक बढ़ाती है। इस तरह एक ऐसी विनाशकारी प्रक्रिया शुरू हो जाती है जो स्वयं उत्पन्न होती है और स्वयं को बढ़ाती जाती है।

गर्मी बढ़ती है तो समुद्र का पानी फैलने लगता है जिससे जल-स्तर बढ़ता है। तटवर्ती इलाक़ों में पानी घुस आता है और टापू डूब सकते हैं।

मौसम के इस बदलाव से जीव-जन्तु, वनस्पति (पेड़-पौधे) और बैक्टीरिया की अनेक प्रजातियाँ ख़त्म हो सकती हैं। इस समय 150 से 200 प्रजातियाँ हर रोज़ ख़त्म हो रही हैं। प्राकृतिक रूप से विभिन्न प्रजातियाँ एक-दूसरे का संतुलन क़ायम रखती हैं। इसका एक स्पष्ट उदाहारण समुद्र का लवण और तेज़ाबियत है। वायुमंडल में रह जानेवाली अतिरिक्त गैसों का एक

हिस्सा समुद्र का पानी सोख लेता है और पानी के साथ रासायनिक प्रतिक्रिया के द्वारा ये गैसें समुद्र के पानी के अम्ल (तेज़ाब) की मात्रा को बढ़ाती हैं। बढ़ती हुई तेज़ाबियत में बहुत-से जलीय जीव और वनस्पतियाँ ज़िन्दा नहीं रह पातीं और इस तरह उनकी प्रजातियाँ ख़त्म होने लगती हैं।

मानव-जीवन में भी विभिन्न बैक्टीरिया की बड़ी अहमियत होती है। बहुत-से सेहतमन्द बैक्टीरिया बीमारियाँ फैलानेवाले कीटाणुओं को क़ाबू में रखते हैं। कुछ बीमारियों के बैक्टीरिया बढ़े हुए तापमान में ही पलते-बढ़ते हैं। तापमान अप्राकृतिक रूप से बढ़ता है तो एक ओर हानिकारक कीटाणु बढ़ने लगते हैं और दूसरी ओर स्वास्थ्यवर्द्धक बैक्टीरिया ख़त्म होने लगते हैं। फलतः विश्व-स्तर पर जन-स्वास्थ्य-संबंधी समस्या, खेती और अनाज के संकट उत्पन्न हो सकते हैं।

इन जलवायु-परिवर्तनों की सबसे चिन्ताजनक विशेषता उनकी शृंखलाबद्ध प्रतिक्रिया (Chain Reaction) है। मौसम में मामूली बदलाव दूसरे बड़े बदलाव का कारण बनता है। इस तरह बहुत तेज़ी से हालात विस्फोटक बन जाते हैं। इस विशेषता को निम्नलिखित उदाहरणों से समझा जा सकता है—

(i) तापमान के बढ़ने से समुद्र का पानी गर्म होता है। गर्म पानी ज़्यादा कार्बन डाइऑक्साइड नहीं रख सकता। वह उसे उत्सर्जित करता है, जिससे वायुमंडल में कार्बन डाइऑक्साइड बढ़ती है और वह वायुमंडल के तापमान को और अधिक बढ़ा देती है।

(ii) उत्तरी ध्रुव के इलाक़ों में गर्मी से बर्फ़ पिघलने लगती है। उसके पिघलने से कार्बन डाइऑक्साइड से 50 गुना ज़्यादा गर्मी पैदा करनेवाली गैस मीथेन निकलती है, जिससे वायुमंडल और अधिक गर्म होता है और बर्फ़ के पिघलने की प्रक्रिया और ज़्यादा तेज़ हो जाती है।

(iii) कार्बन डाइऑक्साइड वायुमंडल को गर्म करती है, जिससे पानी भाप बनकर वायुमंडल में मिल जाता है। भाप ख़ुद ग्रीनहाउस गैस हैं, इसलिए गर्मी बढ़ने की प्रक्रिया और ज़्यादा तेज़ हो जाती है।

इस तरह इस शृंखलाबद्ध प्रक्रिया के नतीजे में कभी भी अचानक धमाका हो सकता है और स्थिति क़ाबू से बाहर हो सकती है। वैज्ञानिकों का विचार है कि मौसमी परिवर्तन की प्रक्रिया एक ऐसी प्रक्रिया है, जो शुरू-शुरू में महसूस नहीं होती, लेकिन तेज़ी से बढ़ती जाती है और अचानक धमाके के साथ ख़तरनाक बन सकती है।

अगर ज़मीन के औसत तापमान में 5^0C की भी वृद्धि हो जाए तो ज़मीन पर से ज़िन्दगी का अन्त हो जाएगा। मौजूदा गति से इस वृद्धि के लिए केवल 50 साल काफ़ी हैं।[6] कार्बन डाइऑक्साइड का अनुपात अगर एक प्रतिशत हो जाए तो ज़मीन की सतह का औसत तापमान 100^0C हो जाएगा यानी वह तापमान जिसपर पानी उबलने लगता है।[7]

हमारे देश में भी मौसम-परिवर्तनों का असर साफ़ महसूस हो रहा है। सभी शहरों में सामान्य तापमान बढ़ रहा है। 2050 तक हमारे देश के अकसर शहरों में ज़्यादा से ज़्यादा तापमान 4^0C बढ़ सकता है। इसका मतलब यह है कि दिल्ली में गर्मी के मौसम में तापमान 50^0C तक पहुँच सकता है। बारिश के मौसम में आनेवाले सालों में 15 दिनों की औसत कटौती हो सकती है। हिमालय के ग्लेशियरों की बर्फ़ पिघलकर पूरे उत्तरी और पूर्वी भारत में निरन्तर बाढ़ की स्थिति पैदा कर सकती है और मौसमी परिवर्तनों के नतीजे में देश के अकसर इलाक़ों में साल भर मलेरिया और डेंगू के रोगाणुओं की संख्या में वृद्धि हो सकती है।[8]

वायु-प्रदूषण

ग्रीनहाउस गैसों के निकलने के साथ-साथ, पूँजीवादी साम्राज्य की ओर से भोग-विलासपूर्ण जीवन-शैली को बढ़ावा देने के कारण और भी ज़हरीली गैसें वायुमंडल में निरन्तर अपना अनुपात बढ़ा रही हैं। इनमें से कुछ महत्त्वपूर्ण गैसों के नाम और उनके पैदा होनेवाली बीमारियों के नाम नीचे की तालिका में अंकित किए जा रहे हैं—

प्रदूषण	स्रोत	प्रदूषण-जनित रोग
हवा में तैरते कण (Suspended Particles)	जलाने की क्रिया उद्योग-धंधे	फेफड़ों का कैंसर, दमा दिल और फ़ेफ़ड़ों की बीमारियाँ
नाईट्रोजन ऑक्साइड	गाड़ियाँ	फेफड़ों की तबाही, साँस की बीमारियाँ
कारबन मोनो ऑक्साइड	कोयला, तेल के जलाने की क्रिया, उद्योग-धंधे	ब्रेन हैमरेज, ऑक्सीजन की पूर्ति रुक जाना,
लेड	गाड़ियाँ	शरीर के हर अंग को नुक़सान पहुँचता है।
हाइड्रोकार्बन	उद्योग-धंधे	मतली, क़ै, थकान और कैंसर इत्यादि।

वायुमंडल में तैरनेवाले कण 'RSPM' विश्व स्वास्थ्य संगठन (WTO) के मैयार के मुताबिक़ 150 Pg/M3 से ज़्यादा नहीं होने चाहिएँ। हमारे देश के चार बड़े शहरों में इनका औसत अनुपात 360 microgram/m3 है। उक्त प्रदूषण के साथ और भी कई ज़हरीले और केंसर पैदा करनेवाले पदार्थ हमारे वायुमंडल में मौजूद हैं।[9]

ओज़ोन का छेद (Ozone Deplation)

अल्लाह तआला ने ज़मीन के चारों ओर ओज़ोन (गैस की एक सतह) पैदा की है। ओज़ोन की यह सतह एक छलनी का काम करती है। सूरज से रौशनी और ताप को ज़मीन पर आने देती है, लेकिन ख़तरनाक पराबैंगनी किरणों (Ultraviolet Rays) को, जो सूरज से रौशनी और गर्मी के साथ

निकलती हैं, रोक देती है। ये पराबैंगनी किरणें मनुष्य, जीव-जन्तुओं और वनस्पतियों के लिए बहुत ही हानिकारिक हैं। मनुष्य की त्वचा (skin) की कोशिकाओं को ये केंसर-ग्रस्त (Cancerous) बना सकती हैं। इसके अतिरिक्त ये मनुष्यों की रोग-प्रतिरोधक-प्रणाली (Immune System) को कमज़ोर करके बहुत-सी दूसरी बीमारियों का कारण बनती हैं।

पराबैंगनी किरणों से मोतिया (Cataract) की शिकायत बढ़ने के मामले भी नोट किए गए हैं।[10]

वनस्पतियों में ये किरणें इनकी वृद्धि को प्रभावित करती हैं। चावल और दूसरे अनेक पौधे नाइट्रोजन की ज़रूरतें एक विशेष प्रकार की बैक्टीरिया 'साइनोबैक्टीरिया (Cyanobacteria) से पूरी करते हैं, जो इनकी जड़ों में पाया जाता है। पराबैंगनी किरणें इस बैक्टीरिया को ख़त्म कर देती हैं। इससे चावल आदि फ़सलें पूरी तरह ख़राब हो सकती हैं।[11]

उपर्युक्त ग्रीनहाउस गैसें और ख़ास तौर पर एयरकंडीशनों तथा रेफ्रीजरेटरों से निकलनेवाली क्लोरोफ्लोरो कार्बन गैसें उपर्युक्त ओज़ोन से प्रतिक्रिया करके उसमें छेद बना देती हैं।

पिछली दो-तीन सदियों की औद्योगिक गतिविधियों के नतीजे में ओज़ोन लहर में गहरा छेद पैदा हो चुका है। 2006 ई॰ में इस छेद के क्षेत्रफल का अनुमान लगभग 29 मिलियन वर्ग किलोमीटर किया गया था। यह छेद बढ़ता ही जा रहा है। इस छेद के साथ पूरी ओज़ोन परत भी बारीक होती जा रही है। 70 के दशक से ओज़ोन के घनत्व में 4% प्रति दशक के औसत से कमी होती जा रही है।[12]

जल-प्रदूषण (Water Pollution)

पानी, हवा के बाद इंसान की सबसे बड़ी ज़रूरत है। दुनिया में हर साल ढाई करोड़ लोग गन्दे पानी के इस्तेमाल से होनेवाली बीमारियों से मरते हैं। 18 लाख बच्चे हर साल केवल डायरिया से मरते हैं। पानी से होनेवाली बीमारियों के कारण दुनिया में बच्चों के 44.5 करोड़ दिन बर्बाद होते हैं जिनमें वे स्कूल नहीं जा पाते। दुनिया भर के 20% निर्धनतम लोगों में केवल 20% लोगों को नल के पानी की

सुविधा प्राप्त है। किसी भी समय विकासशील देशों में आधी से ज़्यादा आबादी प्रदूषित जल-जनित किसी न किसी रोग से ग्रस्त रहती है।[13]

आम तौर पर इस स्थिति के लिए बढ़ती हुई आबादी को ज़िम्मेदार ठहराया जाता है, जबकि सच्चाई यह है कि इसके लिए अमीर-ग़रीब का भेदभाव, बड़ी कम्पनियों की हवस और फ़ुज़ूलख़र्ची जैसे कारक ज़िम्मेदार हैं। विकसित देशों से संबंध रखनेवाले दुनिया के 20% सबसे ज़्यादा धनी लोग दुनिया के पानी का 85% इस्तेमाल करते हैं।[14] यह पानी, फ़ाइव स्टार होटलों के गीज़रों में भाप बन जानेवाले पानी, स्वीमिंग पूलों, वाटर-पार्कों और जल-क्रीड़ा के दूसरे केन्द्रों और इसी तरह की अन्य फ़ुज़ूलख़र्चियों में बर्बाद होता है। पानी के निजीकरण के कारण बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ जल-स्रोतों पर अधिकार जमा लेती हैं। इन कम्पनियों का कारोबार सालाना 200 मिलियन डॉलर तक पहुँच चुका है, जबकि वे दुनिया की आबादी के केवल 7% हिस्से की ज़रूरतों को पूरी करती हैं।[15]

हमारे देश में भी पानी एक पेचीदा मसला बनता जा रहा है। 1947 में हमारे लिए प्रति व्यक्ति 6008 वर्ग मीटर पानी उपलब्ध था जो 1997 ई॰ में घटकर केवल 2226 वर्ग मीटर रह गया। औद्योगिक प्रदूषणों से हमारे देश की अकसर नदियाँ बहुत ख़राब हालत में हैं। यमुना के दिल्ली में दाख़िल होने के बाद इसके पानी में 170 करोड़ लीटर गन्दा पानी (Untreated Sewage) हर रोज़ मिला दिया जाता है। इसके अलावा लगभग 93100 कल-कारख़ानों का कचरा भी हर रोज़ यमुना नदी में दाख़िल होता रहता है। अतः यमुना नदी का BOD (जल-प्रदूषण मापने का एक मानक) लगातार बढ़ रहा है। 2004 ई॰ में सबसे ज़्यादा बड़ा बी ओ डी (BOD) 40 माइक्रोग्राम प्रति लीटर (40 mg/lit) नोट किया गया था, जो 2005 में 59 माइक्रोग्राम प्रति लीटर और 2006 में कई गुना बढ़कर 144 माइक्रोग्राम-प्रति लीटर हो गया।[16] स्पष्ट रहे कि अमेरिका में गटर के पानी का औसत बी ओ डी 200 माइक्रोग्राम प्रति लीटर है।

हमारे देश में ज़मीन की सतह पर पाए जानेवाले पानी (Surface Water) का 70% हिस्सा प्रदूषित है, जबकि क्लास II ग्रुप के शहरों (अपेक्षाकृत छोटे शहरों) में 95% पानी प्रदूषित है। 50% से ज़्यादा उद्योगों द्वारा निर्धारित मानदंड से ज़्यादा प्रदूषित पदार्थों को पानी में बहा दिया जाता है।[17]

जैव-विविधता (Biodiversity) की क्षति

अल्लाह तआला ने कोई चीज़ बेकार नहीं बनाई है। पवित्र क़ुरआन में कहा गया है–

"ऐ हमारे रब! तूने कोई चीज़ बेकार नहीं बनाई।" (3 : 191)

पेड़-पौधों और जीव-जन्तुओं की प्रत्येक प्रजाति के ज़िम्मे इस दुनिया को चलाने के लिए कोई न कोई महत्त्वपूर्ण काम सौंपा गया है। इन प्रजातियों का विनाश दरअस्ल इनके ज़िम्मे किए गए कामों का रुक जाना होता है, जिसके नतीजे में इंसान सहित ब्रह्मांड की हर चीज़ मुश्किलों का शिकार होती है। समुद्रों में पाए जानेवाले नन्हे-मुन्ने प्लवक Planktons वायुमंडल में मौजूद कार्बन डाइऑक्साइड के संतुलन को बनाए रखने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। समन्दर के तापमान के बढ़ जाने से ये विनष्ट हो जाते हैं। इनके विनाश को वायुमंडल में ग्रीनहाउस गैसों के अनुपात और ताप को बढ़ाने का एक प्रमुख कारण माना जाता है। चूहे को खानेवाले साँपों और मच्छर के अंडे खानेवाले मेंढकों के बिना इंसान की ज़िन्दगी मुश्किल है। ये न हों तो प्लेग और मलेरिया की महामारियाँ आनन-फ़ानन इंसान का ख़ातिमा कर देंगी। कुछ प्रजातियों के कामों को हम जानते हैं, लेकिन वनस्पतियों और जन्तुओं और ख़ास तौर पर नज़र न आनेवाले बैक्टीरिया की करोड़ों क़िस्में हमारी ज़िन्दगी की सुरक्षा और हमारे अस्तित्व के लिए अल्लाह के हुक्म से जो ख़ामोश काम कर रही हैं उनका हमें पता भी नहीं है। इसलिए उनका विनाश हमारे लिए कैसी-कैसी क़ियामतें बरपा कर सकता है, इसका अन्दाज़ा भी हम नहीं लगा सकते।

पर्यावरण-विज्ञानियों का अनुमान है कि हमारी दुनिया में से हर रोज़ 150 से 200 वनस्पतियों और जीव-जन्तुओं की प्रजातियाँ ख़त्म हो रही हैं।[18] एक बार एक प्रजाति ख़त्म होती है तो हमेशा के लिए ख़त्म हो जाती है। वैज्ञानिकों का कहना है कि जिस तेज़ी से प्रजातियाँ ख़त्म हो रही हैं। विश्व के ज्ञात इतिहास में इसका प्रमाण केवल डाइनासोरों के ख़ातिमे के दौर में मिलते हैं। इसके बाद हज़ारों-लाखों वर्षों से प्राणियों को कोई बड़ा ख़तरा नहीं था। अब फिर तेज़ी से प्राणियों के ख़त्म होने की प्रक्रिया शुरू हो गई है।

हमारे देश में, जो विश्व-स्तर पर जैव-प्रजातियों का एक महत्त्वपूर्ण केन्द्र है, तेज़ी से यह संकट पैदा हो रहा है। यहाँ पेड़-पौधों की 10% और स्तनधारियों (Mammals) की 20% प्रजातियों के अस्तित्व पर संकट के बादल मंडरा रहे हैं। चीता, एक सींगवाला रहानियो, गुलाबी सिरवाला बतख़, पहाड़ी तीतर, जंगली उल्लू इत्यादि सहित 23 से अधिक प्रजातियाँ ख़त्म हो चुकी हैं।[19]

इन प्रजातियों के ख़ातिमे में औद्योगिकीकरण, जंगलों की कटाई, शिकार, पर्यावरण-प्रदूषणों इत्यादि जैसे कारक के साथ खेती-बाड़ी आदि के तरीक़ों में पूँजीपतियों की ओर से लाई जा रही तब्दीलियाँ भी ज़िम्मेदार हैं। कॉरपोरेट एग्रीकल्चर और बीज और खाद तैयार करनेवाली कम्पनियाँ बड़े पैमाने पर फलों और दूसरे अनाजों की तैयारी के लिए जीन-संबंधी-परिवर्तन (Genetic Modification) करती हैं। इन तब्दीलियों से एक नई प्रजाति वुजूद में आती है और पुरानी प्रजातियाँ ख़तरे में पड़ जाती हैं। भारतीय किसान लगभग 60 हज़ार क़िस्म के चावल (धान) उगाते रहे हैं। अब बीजों की विश्व-स्तरीय कम्पनियाँ उन्हें एक ही क़िस्म का चावल उगाने के लिए मजबूर कर रही हैं। फलों की विभिन्न स्थानीय क़िस्में नष्ट हो रही हैं और विदेशी क़िस्में उनकी जगह ले रही हैं (जैसे अमेरिकी सेब)। मुर्ग़ियों की हज़ारों क़िस्मों की जगह पोल्ट्री की एक ही क़िस्म सारे देश में आम हो रही है। फलतः आनेवाले समय में देशी मुर्ग़ियों की विभिन्न क़िस्में ख़त्म हो सकती हैं।

पर्यावरण से सम्बद्ध एक और बड़ी समस्या प्राकृतिक संसाधनों और विशेष कर ऊर्जा-संकट है। अल्लाह तआला ने इंसान की ज़रूरत को पूरा करने के लिए इस धरती पर भरपूर संसाधन उपलब्ध कराए हैं, लेकिन इंसान के लोभ और लालच की पूर्ति इस तरह के कई ग्रहों से भी संभव नहीं है।

लिविंग प्लानेट की रिपोर्ट के अनुसार इंसानी आबादी ज़मीन की क्षमता से 30% से ज़्यादा संसाधनों का इस्तेमाल कर रही है। इस गति से 2030 तक हमें दो पृथ्वियों की ज़रूरत पड़ेगी।[20]

अमेरिका कुल तेल का 25% इस्तेमाल करता है। बड़ी शक्तियाँ पूर्व-मध्य एशिया के देशों पर दबाव डाल कर ज़्यादा से ज़्यादा तेल निकलवा रही हैं।[21]

पर्यावरण-संकट और दुनिया की ग़रीब जनता

पर्यावरण-संकट का असर सब पर पड़ता है, लेकिन ग़रीब जनता इससे ज़्यादा प्रभावित होती है। फ़िल्टरवाले एयरकंडीशनों का घरों, ऑफ़िसों, कारों, शॉपिंग मालों इत्यादि में इस्तेमाल आम हो गया है। नतीजा यह हुआ कि एक अमीर आदमी का वायु-प्रदूषण से वास्ता कम पड़ता है, लेकिन ग़रीब आदमी रोज़ ज़हरीले वातावरण में साँस लेने पर मजबूर है।

रात-दिन एयरकंडीशनों में रहनेवालों को आसमान से बातें करते हुए तापमान का पता कम ही चलता है। इस तापमान में जलता भी ग़रीब आदमी ही है। अमीरों के लिए विलासिता की वस्तुएँ तैयार करनेवाली कम्पनियाँ जो कचरा आदि पानी में बहाती हैं उसे पीना और मर जाना भी ग़रीब आदमी ही की मजबूरी होती है।

मौसम-परिवर्तनों से अकाल और सूखे की स्थिति पैदा होती है। खेती पर सबसे ज़्यादा देहाती और ग़रीब लोग ही निर्भर होते हैं। अकाल और सूखे की इन परिस्थितियों ने केवल महाराष्ट्र के विदर्भ इलाक़े में ही सरकारी आँकड़ों के मुताबिक़ दो हज़ार किसानों की जानें ले ली हैं।[22] सूखा और अकाल महँगाई पैदा करते हैं। खानेवाली चीज़ों (खाद्य पदार्थों) की क़ीमतें आसमान से बातें करने लगती हैं और ग़रीब लोग भूखे रहने और भूखे मरने को मजबूर होते हैं। जीवों की अनेक प्रजातियों के लुप्त होने का नुक़सान भी ग़रीब किसानों को ही उठाना पड़ता है। देशी मुर्ग़ी ख़त्म हो जाए तो ग़रीब आदमी अपने घर में चार मुर्ग़ियाँ पालकर अंडे नहीं बेच सकता, क्योंकि उसका मुर्ग़ी और अंडे का कारोबार पोल्ट्री फ़ॉर्मों के अमीर मालिकों के क़ब्ज़े में चला जाता है। अगर स्वतः प्राकृतिक रूप से मिलनेवाली धान एवं चावल की विभिन्न नस्लें ख़त्म हो जाती हैं तो वह अपने घर में मुफ़्त में वह प्राप्त बीज बोकर धान नहीं उगा सकता। केवल धनी किसान ही बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के महँगे बीज (जो केवल एक फ़सल में ही काम करते हैं और उनके लिए विशेष प्रकार की महँगी खादों के ज़रीए से ही उगते हैं) ख़रीदकर धान (चावल) उगाता है। इस तरह पर्यावरण-संकट दुनिया भर के ग़रीब लोगों का जीना अजीरन कर देता है। जंगल, पहाड़ और वहाँ का वातावरण (Ecosystem) आदिवासियों और जनजातियों के लिए बड़ा महत्त्व रखता

है। उनका रहन-सहन और रोज़गार सदियों से उससे जुड़ा हुआ है। तरक़्क़ी के नाम पर जंगल वीरान होते हैं तो उन ग़रीबों की दुनिया ही उजड़ जाती है।

इस परिस्थिति के मूल कारण

इस परिस्थिति का मूल कारण 'तकासुर' अर्थात् ज़्यादा से ज़्यादा पाने और समेटने की हवस है। पूँजीवादी व्यवस्था इस 'तकासुर' को बढ़ावा देती है। बड़ी कम्पनियाँ अधिक से अधिक लाभ कमाने के लालच में अपनी पैदावार (Production) को बढ़ाना चाहती हैं। इसके लिए वे विज्ञापन, बाज़ारों की चकाचौंध, भोग-विलासिता, लालच और लोभ को बढ़ावा देनेवाले तरीक़ों और दूसरे साधनों को अपनाकर लोगों के अन्दर हद से ज़्यादा फ़ुज़ूलख़र्ची के रुझान को परवान चढ़ाती हैं। नतीजा यह होता है कि लोग अपनी अनिवार्य ज़रूरतों से कहीं ज़्यादा ख़र्च करने लगते हैं। इन ख़र्चों के नतीजे में और कम्पनियों की ओर से हद से ज़्यादा पैदावार के फलस्वरूप ऊर्जा, पानी और दूसरे प्राकृतिक संसाधनों की बर्बादी होती है; जंगल कटते हैं और जल तथा जलवायु में ज़हरीली गैसें एवं प्रदूषण फैलानेवाले अन्य पदार्थ मिलने लगते हैं। इस तरह यह 'तकासुर' पूरी दुनिया के इंसानों के लिए विनाश का कारण बन रहा है। अल्लाह तआला कहता है—

> "'तकासुर' (एक-दूसरे से ज़्यादा माल हासिल करने की धुन) ने तुम्हें हलाक कर दिया।" (क़ुरआन, 102 : 1)

300 हॉर्सपॉवर की एक कार (मसलन मर्सिडीज़ bhp 272) उतनी ही कार्बन डाइऑक्साइड छोड़ती है जितनी 300 घोड़ों की एक फ़ौज छोड़ती है। मोटर और गैस-उद्योग विज्ञापनों की चकाचौंध और नई जीवन-शैली के (Life Style) के ग्लैमर से लोगों को इस बात के लिए तैयार करती है कि घर का हर सदस्य कार इस्तेमाल करे और वह भी ज़्यादा हॉर्स-पॉवरवाली महँगी कार। एक गैलन (लगभग 375 लीटर) गैसलॉलाइन के इस्तेमाल से जो कार्बन डाइऑक्साइड पैदा होती है उसे सोखने के लिए एक बहुत बड़े पेड़ को एक साल लगता है।

पहले चूँकि भोग-विलास के ये साधन बहुत कम थे और बहुत-से तो थे भी नहीं, इसलिए प्रकृति का संतुलन बना रहता था। अगर इंसान ने अल्लाह की दी हुई इन नेमतों का इस्तेमाल संतुलन और एहतियात के साथ किया होता तो अभी भी प्रकृति का संतुलन और सामंजस्य बना रहता;

लेकिन जब घर का हर बच्चा तीन सौ घोड़ों की फ़ौज (300 हॉर्सपॉवर की कार) लेकर निकलने लगा, गाड़ियों की भरमार हो गई; रेफ़्रीजरेशन और एयरकंडीशनिंग को ज़िन्दगी की ज़रूरतों में शामिल कर लिया गया और प्राकृतिक संसाधनों को बेदर्दी से फूँका जाने लगा तो पर्यावरण-संकट पैदा होना स्वाभाविक ही था। अल्लाह तआला ने अपनी किताब पवित्र क़ुरआन में कहा है—

> "इंसान की अपनी कमाई से थल और जल में बिगाड़ पैदा हो गया।" (सूरा 30 : 41)

इसलिए पर्यावरण-संकट के लिए धनी देश और वहाँ के अमीर निवासी बुनियादी तौर पर ज़िम्मेदार हैं। निम्नांकित तालिका में दुनिया के विभिन्न वर्गों के अन्दर ख़र्च करने के रुझान (Consumption Pattern) को दर्शाया गया है—
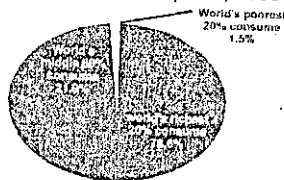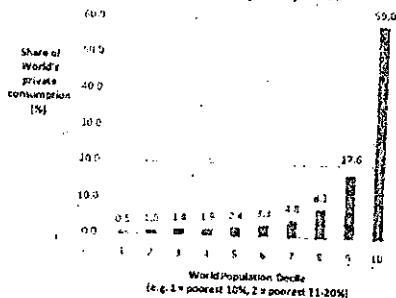
इससे अन्दाज़ा होता है कि ग़रीब लोग इस संकट के लिए बिलकुल ज़िम्मेदार नहीं हैं, बल्कि इसके लिए ज़िम्मेदार वे लोग हैं जो अपनी ज़रूरतों से कहीं ज़्यादा संसाधनों और ऊर्जा का इस्तेमाल कर रहे हैं।

दुनिया के 20% धनी लोग दुनिया की ऊर्जा का 58% इस्तेमाल कर रहे हैं, जबकि 20% निर्धनतम लोग केवल 4% ऊर्जा का इस्तेमाल करते हैं। दुनिया भर में जितनी गाड़ियाँ हैं, उनके 87% हिस्से का इस्तेमाल केवल 20% सबसे धनी लोग ही करते हैं। निर्धनतम 20% लोग केवल 1% गाड़ियाँ इस्तेमाल करते हैं।[23]

अमेरिका में जितने ड्राइविंग लाइसेंस हैं उनसे ज़्यादा कारें हैं। इसका मतलब यह है कि प्रत्येक व्यक्ति एक से ज़्यादा कारें इस्तेमाल करता है।[24] अमेरिका में गाड़ियों की कुल संख्या लगभग 25 करोड़ है, जो वहाँ की आबादी से कुछ ही कम है अर्थात् 1000 आदमियों पर 765 गाड़ियाँ हैं; जबकि भारत में 1000 व्यक्तियों पर केवल 12 गाड़ियाँ हैं और इथोपिया, नाइजीरिया, माली इत्यादि में एक हज़ार व्यक्तियों पर केवल एक गाड़ी है।[25]

वैज्ञानिकों का अन्दाज़ा है कि औसतन एक अमेरिकी किसी ग़रीब देश के एक नागरिक की तुलना में दुनिया की जलवायु को 100 गुना ज़्यादा नुक़सान पहुँचाता है। अगर पूरी दुनिया के लोग एक औसत अमेरिकी के समान अपना जीवन-स्तर (Standard of Life) बना लें तो हमें इस ज़मीन के समान पाँच ज़मीनों और उनके संसाधनों की ज़रूरत होगी। इसके विपरीत अगर हर व्यक्ति एक बंगलादेशी के समान जीवन-स्तर बना ले तो हमारी ज़मीन 22 मिलियन (मौजूदा आबादी का चार गुना) इंसानों के लिए पर्याप्त होगी।[26] हद से ज़्यादा ख़र्च करने की प्रवृत्ति ने उपभोक्ताओं के अन्दर संसाधनों और वस्तुओं के उपभोग के सिलसिले में बेदर्दी पैदा कर दी है। जितना ख़र्च होता है, उतना ही बर्बाद भी होता है। फ़ाइव स्टार होटलों के बाथरूम में लगे गीज़रों (जो चौबीस घंटे अकारण पानी गर्म करते रहते हैं, ताकि हर घड़ी गर्म पानी मिलता रहे) में से जो पानी भाप बनकर बर्बाद होता है, अगर सिर्फ़ उसे जमा किया जाए तो दुनिया के कई ग़रीब परिवारों को साफ़ पानी मिल सकता है। अमेरिका और दूसरे विकसित देश एक तिहाई से ज़्यादा खाद्यान्न फेंक देते हैं।[27] अमेरिका में जो कचरा सालभर में जमा

हो जाता है उसे अगर ट्रकों में लाद दिया जाए तो उन ट्रकों की 1,45,000 मील लम्बी (ज़मीन और चाँद की दूरी का आधा) क़तार बनेगी।[28] अमेरिका में पैक किए हुए जितने खाद्य पदार्थ तैयार होते हैं उनका 27 प्रतिशत कभी इस्तेमाल ही नहीं होता। वे फ़ैक्ट्रियों, दुकानों या घरों के रेफ़्रीजरेटरों में पैक की हुई हालत में ही कूड़े-कचरे के ढेर का हिस्सा बन जाते हैं।[29]

इन तथ्यों से यह बात मालूम होती है कि पर्यावरण-संकट का मूल कारण ज़रूरत से ज़्यादा ख़र्च करना, भोग-विलासिता और फ़ुज़ूलख़र्ची की प्रवृत्ति है। पूँजीवादी साम्राज्य व्यापारिक और औद्योगिक कम्पनियों को ज़्यादा से ज़्यादा फ़ायदा पहुँचाने के लिए विज्ञापनों के द्वारा इस फ़ुज़ूलख़र्ची की प्रवृत्ति पैदा करता है। फ़ुज़ूलख़र्ची की बेलगाम प्रवृत्ति पैदा करके ये कम्पनियाँ अंधाधुंध औद्योगिकीकरण करती हैं। जंगलों को काटती हैं; ऊर्जा का बेदर्दी से इस्तेमाल करती हैं और बड़ी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसें उत्सर्जित करती हैं।

अमेरिका ने ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन (निकलना) अब तक दुनिया के दूसरे देशों के मुक़ाबले में सबसे ज़्यादा किया है, जबकि वहाँ की आबादी दुनिया की आबादी का केवल पाँच प्रतिशत है। कई रिपोर्टों में यह बात स्पष्ट रूप से सामने आ चुकी है कि अमेरिका ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन के लिए सबसे ज़्यादा ज़िम्मेदार है। मसलन, वर्ल्ड रिसोर्स इंस्टीट्यूट (WRI) की रिपोर्ट के मुताबिक़ 1950 से अमेरिका अब तक 50.7 बिलियन टन कार्बन वायुमंडल में छोड़ चुका है, जबकि चीन ने (अमेरिका से 4.6 गुना ज़्यादा आबादी होने के बावजूद) 15.7 बिलियन टन और भारत (अमेरिका से 3.5 गुना आबादी) ने केवल 4.2 बिलियन टन कार्बन का उत्सर्जन किया है।[30] क्रिश्चियन ऐड की रिपोर्ट के अनुसार विकसित देशों ने ग़रीब देशों को पर्यावरण के मैदान में जो नुक़सान पहुँचाया है, उसकी कम से कम क़ीमत उन्हें 600 मिलियन डॉलर अदा करनी होगी, जो ग़रीब देशों के कुल क़र्ज़ों का तीन गुना है।[31]

ऊर्जा का संकट

यक़ीनी भंडार (Proven Reserves) अर्थात् वे भंडार जहाँ तेल की उपलब्धता यक़ीनी है और जहाँ से तेल निकालना वर्तमान टेक्नॉलोजी के द्वारा संभव है,[32] आगामी 30 साल चल सकते हैं।

इन आँकड़ों पर भी कुछ वैज्ञानिक संदेह प्रकट करते हैं कि तेल कम्पनियाँ तेल-भंडार के बारे में झूठ बोलने की आदी हो चुकी हैं। मिसाल के तौर पर, 'सऊदी आरामको कम्पनी' के वाइस प्रेसीडेंट कहते हैं कि तेल के जो भंडार (Reserves) हैं वे केवल संसाधन (Resources) हैं। इस समय न तो उन तक पहुँचना संभव है और न ही उनसे तेल निकालना।[33] 2004 ई॰ के शुरू में तेल कम्पनी 'डचशेल' ने यह स्वीकार करके चौंका दिया था कि उसके तेल और गैस के ज्ञात भंडारों में से एक चौथाई मौजूद नहीं है। उसने झूठ बोला था। इसी तरह टेक्सास की कम्पनी 'एलपासो' ने अपने भंडार के एलान को बदला और 43% कमी कर दी अर्थात् उसने अपने भंडार में 43% बढ़ाकर दिखाया था।

पर्यावरण-संकट और उसे रोकने की कोशिशें एवं साम्राज्य के हस्तक्षेप

चूँकि पर्यावरण-संकट एक विश्वव्यापी समस्या है और इसका संबंध सम्पूर्ण मानव-जाति के अस्तित्व से जुड़ा है, इसलिए यह विश्व-राजनीति के एजेंडे में स्पष्ट रूप से शामिल रहती है। पर्यावरण-विज्ञानी और पर्यावरण-सुरक्षा से जुड़ी संस्थाएँ ज़ोर-शोर के साथ सरकारों को इस समस्या की गंभीरता और संवेदनशीलता का एहसास कराने की कोशिशें करती रहती हैं, जिनके नतीजे में कई विश्व-सम्मेलनों में इस समस्या पर गंभीर विचार-विमर्श हुआ है।

विश्व-व्यापार पर प्रभावी पूँजीवादियों और उनके पाश्चात्य-आक़ा व संरक्षक उन कोशिशों में हमेशा रुकावटें डालते रहे हैं, जो पर्यावरण-सुरक्षा के लिए की जाती रही हैं। इसका एक स्पष्ट प्रमाण क्योटो-समझौता और उसके बारे में पश्चिमी देशों का रवैया है।

क्योटो-समझौता एक बहुत ही पेचीदा समझौता है, जिसमें ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी के लक्ष्य विभिन्न देशों को दिए गए हैं। अगर कोई देश अपने निर्धारित लक्ष्य से अधिक गैसों का उत्सर्जन करता है, तो उसे अपने किसी पड़ोसी देश से लक्ष्य ख़रीदना होगा अर्थात् पड़ोसी देश को लक्ष्य के बदले क़ीमत चुकाकर इस बात के लिए राज़ी करना होगा कि वह उन गैसों के उत्सर्जन में उसके हिस्से की कमी अपने हिस्से में ले ताकि विश्व-स्तर पर उत्सर्जन का एक निर्धारित अनुपात बना रहे। तात्पर्य यह कि

राशि देनेवाले देश के लक्ष्य का एक भाग राशि लेनेवाला देश पूरा करेगा।

परन्तु यह समझौता एक लंगड़ा-लूला समझौता साबित हुआ। पर्यावरण-विज्ञानियों ने ग्लोबल वार्मिंग को कंट्रोल करने के लिए इस समझौते को अपर्याप्त ठहराया है। वे संगठन और संस्थाएँ जो विश्व-स्तर पर इंसाफ़ और बराबरी की झंडावाहक हैं 'लक्ष्य ख़रीदने' के तरीक़े को बहुत ही अन्यायपूर्ण और अत्याचारपूर्ण ठहराती हैं, लेकिन अमेरिका इस लंगड़े समझौते को भी मानने को तैयार नहीं है।

क्योटो-समझौते पर 80 से ज़्यादा देशों ने हस्ताक्षर कर दिए हैं। जॉर्ज बुश सीनियर के नेतृत्व में अमेरिका ने भी 1992 ई॰ में इस समझौते पर हस्ताक्षर कर दिए थे और मार्च 1994 से यह समझौता लागू भी हो गया था, परन्तु जॉर्ज बुश जूनियर के नेतृत्व में 2001 में अमेरिका ने इस समझौते को तोड़ने का एलान कर दिया। अमेरिका का यह कहना है कि उत्सर्जन के लक्ष्य का निर्धारण प्रति व्यक्ति के आधार पर नहीं होना चाहिए।

क्योटो-समझौते में संयुक्त, लेकिन विभेदात्मक (Common but differential) उत्तरदायित्व के सिद्धान्त से सहमति दिखाई गई थी। इसका मतलब यह था कि चूँकि ऐतिहासिक रूप से विकसित देश अभी तक बड़ी मात्रा में ग्रीनहाउस गैसों का उत्सर्जन कर चुके हैं, इसलिए भविष्य में उनके उत्सर्जन में कमी की ज़िम्मेदारी भी उन्हीं की बनती है और यह कि उत्सर्जन में कमी के लक्ष्यों का निर्धारण भी प्रति व्यक्ति के आधार पर ही किया जाए। भारत और चीन की आबादी ज़्यादा है। बड़ी आबादी की ज़रूरतों की पूर्ति के लिए इन दोनों देशों को औद्योगिक गतिविधियाँ तो ज़्यादा करनी ही पड़ेंगी, ज़्यादा सवारियों का भी इस्तेमाल करना पड़ेगा। इसलिए यह बात पूरी तरह तर्कसंगत है कि ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी का लक्ष्य, मसलन, नार्वे से कम होगा, जहाँ की आबादी इन दोनों देशों की तुलना में बहुत कम है।[34]

लेकिन जॉर्ज बुश जूनियर का प्रशासन इस सीधी-सादी बात को भी मानने के लिए तैयार नहीं था। बुश-प्रशासन की ज़िद यह थी कि भारत और चीन को आबादी की अधिकता का लाभ नहीं मिलना चाहिए और ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन में कमी का लक्ष्य कम नहीं होना चाहिए। इस ज़िद को लेकर अमेरिका ने समझौता तोड़ दिया और अब वह किसी नए समझौते के लिए भी तैयार नहीं है।

पिछले साल जापान में जी-8 (विकसित देशों के प्रतिनिधियों) का जो सम्मेलन हुआ था, उसमें प्रगतिशील देशों ने बहुत कोशिश की कि विकसित देश ग्रीनहाउस गैसों को कम करने के संबंध में लक्ष्य का निर्धारण कर लें। सम्मेलन के बाद बड़े ज़ोर-शोर से यह एलान किया गया कि विकसित देश 2050 तक गैसों के उत्सर्जन को आधा करने पर सहमत हो गए हैं। मेज़बान जापान ने एलान किया कि यह बहुत कामयाब सम्मेलन रहा। बाद में जब विस्तृत ब्यौरा प्रकाशित और प्रसारित हुआ तो यह हास्यास्पद परिस्थिति सामने आई कि 2050 ई॰ तक उत्सर्जन को आधा करने पर तो सहमति हो गई है, लेकिन इस 'आधे' का निर्धारण किस साल को आधार (Base Year) मानकर किया जाएगा, यह तय नहीं हो सका। इसलिए निर्धारित मात्रा के साथ उत्सर्जन में कमी की समय-सीमा का निर्धारण संभव नहीं।

मानो इस सम्मेलन द्वारा दुनिया की आँखों में धूल झोंकने की कोशिश की गई। कोपेनहेगन में 7-15 दिसम्बर 2009 के बीच दुनिया भर के नेताओं का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण सम्मेलन 'जलवायु-परिवर्तन' पर होने जा रहा है, जिसके बारे में भारत का कहना यह है कि यह सम्मेलन क्योटो-समझौते की अगली कड़ी है और इसमें क्योटो-समझौते में तय किए गए 2012 के लक्ष्यों से आगे के लक्ष्य निर्धारित किए जाने हैं, जबकि अमेरिका टाल-मटोल की अपनी पुरानी नीति पर ही चल रहा है। वह अभी भी इस बात पर अड़ा हुआ है कि क्योटो-समझौता ख़त्म हो गया है। इसलिए अब पूरे समझौते पर नए सिरे से बातचीत होनी है।

अन्दाज़ा यही है कि इस बार भी अमेरिका दुनिया भर के नेताओं को बेकार की बहसों में उलझाकर किसी सर्वसम्मत लक्ष्य के निर्धारण के संबंध में समझौता होने ही नहीं देगा।

बाली के सम्मेलन में दुनिया भर के कई नेताओं ने इस बात की कोशिश की कि बड़ी-बड़ी औद्योगिक कम्पनियों को पर्यावरण की ज़िम्मेदारी के संबंध में कुछ बातों का पाबन्द किया जाए। लेकिन ब्रिटेन और अमेरिका ने इस का कड़ा विरोध किया, जिसके कारण यह मंसूबा कामयाब नहीं हो सका; हालाँकि यूरोपियन यूनियन का समर्थन उन नेताओं को प्राप्त था।[35]

ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन करनेवालों की सूची में कनाडा भी अमेरिका और ब्रिटेन के साथ ऊपर ही है। कनाडा के प्रधानमंत्री बड़ी ढिठाई

के साथ पर्यावरण-प्रदूषण से सम्बन्धित सभी तथ्यों को छिपाते रहे हैं। दुनिया भर के पर्यावरण-विज्ञानी ग्रीनहाउस गैसों के दुष्प्रभावों की एक स्वर में घोषणा करते रहे हैं, इन वैज्ञानिकों के विपरीत कनेडियन प्रधानमन्त्री मात्र एक कपोल-कल्पित कहानी कहते रहे हैं।[36]

अमेरिकी पत्रिका 'रॉलिंग स्टोन्स' (Rolling Stones) ने सैकड़ों सरकारी दस्तावेज़ों के हवालों के साथ एक शोध-रिपोर्ट प्रकाशित की थी कि किस तरह अमेरिका प्रशासन-बुश के नेतृत्व में जलवायु-परिवर्तनों के बारे में ग़लत सूचनाएँ फैलाने और आम लोगों को यह समझाने की कोशिश करता रहा है कि इस तरह का कोई ख़तरा नहीं है।[37] अमेरिकी लॉबी 'स्टरेंडी रेंडॉल' को बुश-प्रशासन में एक प्रमुख स्थान प्रदान किया गया था, जिसने उन सभी वैज्ञानिकों की बरख़ास्तगी की माँग की थी, जो पर्यावरण-प्रदूषण के ख़तरों पर शोध कर रहे थे।[38] बड़े-बड़े वैज्ञानिकों पर दबाव डाला जाने लगा कि वे अपने शोध-लेखों को बुश-प्रशासन और बड़ी-बड़ी औद्योगिक कम्पनियों की मर्ज़ी के मुताबिक़ इस तरह ढाल लें कि पर्यावरण-प्रदूषण के ख़तरों का एहसास कम से कम हो। कुछ वैज्ञानिकों ने इस दबाव से तंग आकर अपने पदों से त्यागपत्र दे दिए।[39] एसोसिएटेड प्रेस की ओर से किए गए एक सर्वेक्षण (Survey) में 279 पर्यावरण-विज्ञानियों में से हर पाँच में से दो ने यह शिकायत की कि उनके शोध-निष्कर्षों को एडिट (परिवर्तित) कर दिया गया और उनके निष्कर्षों के बिलकुल विपरीत निष्कर्ष निकाले गए; जबकि आधे से अधिक वैज्ञानिकों ने यह कहा कि उनपर ग्लोबल वार्मिंग या मौसम-परिवर्तनों के संबंध में मिले तथ्यों को निकाल देने के लिए प्रशासन की ओर से दबाव डाला गया।[40] जनवरी 2006 में नासा (NASA) के वैज्ञानिक डॉ॰ जेम्स हेंसन ने एक इंटरव्यू में यह रहस्योद्‌घाटन करके सारी दुनिया को हैरत में डाल दिया कि जलवायु-परिवर्तन और पर्यावरण के ख़तरे के बारे में उनके शोध-निष्कर्षों को जनता के सामने न लाने के लिए उनपर सख़्त दबाव डाला गया और विचारों की अभिव्यक्ति की स्वतंत्रता का ढोल पीटनेवालों के चैम्पियन देश के प्रशासन ने 'ख़तरनाक नतीजे' (Dire Consequences) की धमकी दी और नासा के वैज्ञानिकों पर इस बात की पाबन्दी लगा दी गई कि वे प्रशासन की इजाज़त से ही पत्र-पत्रिकाओं या जनसंचार के अन्य माध्यमों से बातचीत कर सकते हैं और यह बातचीत भी

एक उच्च अधिकारी की मौजूदगी में ही हो सकती है।[41] पेनोरमा ने बुश के एक सलाहकार का इंटरव्यू छापा जिसने 2000 के चुनावों से पहले उन्हें सलाह दी थी कि वह ग्लोबल वार्मिंग का इनकार करे और उन वैज्ञानिकों की सेवाएँ ले जो इसके ख़तरों को बहुत कम करके बता सकें।[42]

मानव-जाति के अस्तित्व और उसकी सुरक्षा को दाँव पर लगाकर ज्ञान-विज्ञान द्वारा छल-कपट और झूठ का सहारा इसलिए लिया गया कि तेल और इस्पात की उन कम्पनियों के लाभों में कमी न आए, जिनके हितों की सुरक्षा उन राजनेताओं के ज़िम्मे थी।

अमेरिका की बड़ी-बड़ी कम्पनियाँ (मसलन तेल कम्पनी एक्सॉन मोबिल) ऐसी-ऐसी गुमराह करनेवाली किताबें छापती रहती हैं, जिनके द्वारा जनता को वैज्ञानिकों की विश्व-स्तर पर सहमति के ख़िलाफ़ यह समझाने की कोशिश की जाती है कि ग्लोबल वार्मिंग कोई बड़ा ख़तरा नहीं है। ब्रिटिश रॉयल सोसाइटी के अनुसार एक्सॉन मोबिल कम्पनी ने 1998 से 2005 तक इस मक़सद के लिए 2.9 मिलियन डॉलर ख़र्च किए हैं।[43]

1998 में न्यूयार्क टाइम्स ने एक पब्लिक रिलेशन फ़र्म के मेमोरेंडम का रहस्योद्घाटन किया था, जिसमें मौसम-परिवर्तन के बारे में उद्योग-जगत् के दृष्टिकोण के समर्थन के लिए बड़े पैमाने पर वैज्ञानिकों को ख़रीदना और उन्हें पत्रकारों, वैज्ञानिकों और आम जनता को इंडस्ट्री के नज़रिए को समझाने की ट्रेनिंग देने के मंसूबे का ब्यौरा था। पाँच मिलियन डॉलर (20 करोड़ रुपये) इस मंसूबे के बजट के लिए रखे गए थे। केवल 20 आला दर्जे के वैज्ञानिकों पर 60 लाख डॉलर (लगभग 3 करोड़ रुपये) ख़र्च किए जाने थे।[44] यह लगभग वैसी ही कपट-नीति है जैसी तम्बाकू की इंडस्ट्री ने कैंसर के ख़तरों के बारे में शोध-अनुसंसाधनों को रोकने के लिए अपना रखी थी।

ख़ुशक़िस्मती से बुश-प्रशासन की उन कोशिशों को ख़ुद अमेरिकी जनता का समर्थन नहीं मिल सका और पर्यावरण से सम्बद्ध संगठनों, वैज्ञानिकों, क़ानूनविदों, यूनिवर्सिटियों और शोध-संस्थानों की साझा कोशिशों से विज्ञान से संबंधित यह धोखाधड़ी जल्द ही बेनक़ाब हो गई, लेकिन अमली तौर पर सरकारी सतह पर पर्यावरण के संतुलन को बनाए रखने के लिए की जा रही कोशिशों के प्रति असहयोग का रवैया अभी भी जारी है।

○ ○ ○

इस्लामी दृष्टिकोण

पर्यावरण-संकट प्रकृति से संघर्ष का परिणाम है। नई पश्चिमी संस्कृति की इमारत जिन भौतिकतावादी दर्शनों पर खड़ी है, उसमें इंसान को केन्द्रीय स्थान प्राप्त है और इंसान की बुद्धि सर्वोच्च है। इस सोच ने जो घमंड और अहंकार पैदा किया उसने प्रकृति से संघर्ष और उसको पराजित करने की भावना पैदा की और किसी भी तरह भौतिक सुख-शान्ति और विलासिता के साधनों की प्राप्ति इंसान का एक मात्र मक़सद बन गया। यह भौतिकतावादी मक़सद जब नैतिकता के नियमों से रहित जीवन-शैली से जुड़ा तो इसने जो बिगाड़ पैदा किए, पर्यावरण-संकट उसका प्रदर्शन है।

सृष्टि की अवधारणा

इस्लाम की नज़र में सारी सृष्टि (कायनात) अल्लाह तआला ने बनाई है और इसमें कोई चीज़ बेकार नहीं बनाई—

"ऐ मेरे रब! तूने कोई चीज़ बेकार नहीं बनाई।"

(क़ुरआन, 3 : 191)

"हमने आसमान और ज़मीन को और जो कुछ उनके बीच है, उसको बेकार नहीं पैदा किया है। यह तो उन लोगों का गुमान है जिन्होंने इनकार किया। और ऐसे इनकार करनेवालों के लिए बर्बादी है जहन्नम (नरक) की आग से।" (क़ुरआन, 38 : 27)

"और हमने आसमानों और ज़मीन को और जो कुछ उनके बीच है उन्हें खेल नहीं बनाया, हमने उनको (आसमानों और ज़मीन) को सोद्देश्य पैदा किया है, लेकिन अधिकतर लोग नहीं जानते।"

(क़ुरआन, 44 : 38, 39)

क़ुरआन मजीद इस बात का भी स्पष्टीकरण (वज़ाहत) करता है कि यह पूरी सृष्टि (कायनात) और इसकी हर चीज़ एक योजना और संतुलन के साथ बनाई गई है—

"आसमान को उसने ऊँचा किया और संतुलन (मीज़ान) क़ायम कर दिया। इसकी अपेक्षा (तक़ाज़ा) यह है कि तुम इसमें विघ्न न डालो।" (55 : 7, 8)

"जिसने सात आसमान परस्पर सामंजस्य के साथ बनाए। तुम रहमान (दयावान प्रभु) की रचना में कोई असंगति और विषमता न देखोगे। इसलिए तुम (चिन्तन-मनन की) दृष्टि डालकर देखो। क्या तुम इसमें कोई छेद या बिगाड़ (कमी या बेरब्ती) देखते हो?"
(क़ुरआन, 67 : 3)

क़ुरआन यह भी कहता है कि अल्लाह तआला ने जो प्रकृति बनाई है उसमें कोई बदलाव नहीं आ सकता। प्रकृति और उसके संसाधनों को अभिभूत करने और उनसे सेवा लेने की एक सीमा है। इंसान कितना ही तरक़्क़ी कर ले वह अल्लाह की सुन्नत (रीति) और उसकी व्यवस्था को नहीं बदल सकता—

"क़ायम हो जाओ उस प्रकृति पर जिसपर अल्लाह ने लोगों को पैदा किया है। उसकी पैदा की हुई संरचना बदली नहीं जा सकती।"
(क़ुरआन, 30 : 30)

"अल्लाह की (यही) सुन्नत (रीति) उन लोगों में (भी जारी रही) है जो पहले गुज़र चुके हैं, और आप अल्लाह के दस्तूर (नियम और रीति) में हरगिज़ कोई बदलाव नहीं पाएँगे।" (क़ुरआन, 33 : 62)

इस तरह क़ुरआन मजीद ने सृष्टि (कायनात) के संबंध में यह यक़ीन पैदा किया है कि यह कायनात एक ख़ास मक़सद के साथ, एक विशेष क्रमबद्धता एवं संतुलन के साथ, एक योजना और डीज़ाइन के साथ बनाई गई है। किसी भी संतुलित व्यवस्था में मनमानी पूरी व्यवस्था में विघ्न और बाधा उत्पन्न करती है। इसलिए इस सृष्टि की व्यवस्था में भी मनमानी नहीं की जा सकती और न इसके संसाधनों का अंधाधुंध इस्तेमाल किया जा सकता है।

ख़िलाफ़त और अमानत की अवधारणा

पवित्र क़ुरआन कहता है कि इस सृष्टि (कायनात) का असल मालिक एक मात्र ख़ुदा है, जो अपनी ज़ात में यकता (अद्वितीय) है और उसका कोई साझी नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि की हर चीज़, यहाँ तक कि इंसान का शरीर और उसका माल भी असल में प्रतिष्ठावान अल्लाह की मिल्कियत है—

"कहो कि ज़मीन और ज़ो कुछ इसमें है (सब) किसकी सम्पत्ति

(मिल्कियत) है, अगर तुम (कुछ) जानते हो। वे तुरन्त बोल पड़ेंगे कि (सब कुछ) अल्लाह का है, (तो) कहो : फिर तुम नसीहत क़बूल क्यों नहीं करते?" (क़ुरआन, 23 : 84, 85)

इंसान को इस सृष्टि के एक हिस्से में लाभ उठाने का अधिकार दिया गया है और चीज़ें उसके अधीन की गई हैं–

"और उसने तुम्हारे लिए जो कुछ आसमानों में है और जो कुछ ज़मीन में है, सबको अपनी ओर से तुम्हारे काम में लगा रखा है। निस्सन्देह इसमें उन लोगों के लिए निशानियाँ हैं जो सोच-विचार से काम लेते हैं।" (क़ुरआन, 45 : 13)

"और निस्सन्देह हमने आदम की औलाद को इज़्ज़त दी और हमने उनको थल और जल (यानी शहरों, रेगिस्तानों, जंगलों, समुद्रों और नदियों) में (विभिन्न सवारियों पर) सवार किया और हमने उन्हें अच्छी-पाक चीज़ों से रोज़ी दी और हमने उन्हें बहुत-से प्राणियों पर, जिन्हें हमने पैदा किया है, प्रधानता देकर श्रेष्ठ बना दिया।" (क़ुरआन, 17 : 70)

इंसान के वश में ये चीज़ें इसलिए की गईं कि इंसान, ज़मीन पर ख़ुदा का प्रतिनिधि (ख़लीफ़ा) है और ख़लीफ़ा की हैसियत से उसे अल्लाह के दिए हुए संसाधनों का अल्लाह की मर्ज़ी के मुताबिक़ संतुलन के साथ इस्तेमाल करना है–

"और वही है जिसने तुमको ज़मीन पर ख़लीफ़ा (अधिकारी, उत्तराधिकारी, नायब) बनाया और तुममें से कुछ लोगों के दर्जे कुछ लोगों की अपेक्षा ऊँचे रखे, ताकि वह उन (चीज़ों) में तुम्हारी परीक्षा ले जो उसने तुम्हें (अमानत के तौर पर) दे रखी हैं। निस्सन्देह तुम्हारा रब (अज़ाब के हक़दारों को) जल्द सज़ा देनेवाला है। और निश्चय ही वह (माफ़ी चाहनेवालों को) बड़ा ही माफ़ करनेवाला और मेहरबान है।" (क़ुरआन, 6 : 165)

"और (वह वक़्त याद करें) जब आपके रब ने फ़रिश्तों से कहा कि मैं ज़मीन में अपना नायब (सत्ताधारी, प्रतिनिधि, उत्तराधिकारी) बनानेवाला हूँ।" (क़ुरआन, 2 : 30)

"अल्लाह और उसके रसूल पर ईमान लाओ और उस (धन-सम्पत्ति)

में से (भलाई के कामों में) ख़र्च करो जिसमें उसने तुम्हें अपना नायब (और अमीन) बनाया है। अतः तुममें से जो लोग ईमान लाए और उन्होंने ख़र्च किया उनके लिए बहुत बड़ा प्रतिदान (अच्छा बदला) है।" (क़ुरआन, 57 : 7)

जवाबदेही की अवधारणा

पवित्र क़ुरआन कहता है कि अल्लाह तआला ने इंसान को जो कुछ प्रदान कर रखा है उसमें से हर चीज़ के बारे में उससे पूछगछ होगी—

"और वही जिसने तुमको ज़मीन पर ख़लीफ़ा (अधिकारी, उत्तराधिकारी, नायब) बनाया और तुममें से कुछ लोगों के दर्जे कुछ लोगों की अपेक्षा ऊँचे रखे, ताकि वह उन (चीज़ों) में तुम्हारी परीक्षा ले जो उसने तुम्हें (अमानत के तौर पर) दे रखी हैं। निस्सन्देह तुम्हारा रब (अज़ाब के हक़दारों को) जल्द सज़ा देनेवाला है। और निश्चय ही वह (माफ़ी चाहनेवालों को) बड़ा ही माफ़ करनेवाला और मेहरबान है।" (क़ुरआन, 6 : 165)

यह मूल अवधारणा है जो दुनिया (कायनात) के संसाधनों के बारे में ज़िम्मेदारी का ज़रबरदस्त एहसास पैदा करती है, और इंसान— बे नकेल के ऊँटों जैसा— अर्थात् स्वेच्छाचारी—नहीं रहता जैसा पश्चिमी दुनिया का इंसान अपने आपको समझ लेता है। ज़िम्मेदारी का यह एहसास इंसान को मजबूर करता है कि वह दुनिया के संसाधनों के इस्तेमाल में सतर्कता और सन्तुलन से काम ले।

इस्लाम केवल इस अवधारणा को मन में बिठाकर ही संतुष्ट नहीं हो जाता, बल्कि इसी के आधार पर पर्यावरण-सम्बन्धी नीति और नियमों की एक मज़बूत इमारत खड़ी करता है तथा नैतिक और क़ानूनी माध्यमों का इस्तेमाल करते हुए इंसान को पाबन्द करता है कि वह इस ज़मीन पर पूरी ज़िम्मेदारी के साथ अपने कर्तव्य का निर्वाह करे। पर्यावरण-सम्बन्धी इस्लामी शिक्षाओं का विवरण यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है—

(1) सादा जीवन अपनाने और ऐशो-आराम से बचने की शिक्षा

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा—

"साधारण ढंग से रहना ईमान में से है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

आप (सल्ल॰) ने यह भी कहा—

"दुनिया का सुख-चैन मेरे लिए नहीं है। मैं एक मुसाफ़िर की तरह हूँ जो आराम के लिए थोड़ी देर पेड़ की छाया में ठहरता है, फिर चल देता है।" (हदीस : तिरमिज़ी)

आप (सल्ल॰) का कथन है—

"जब तुम किसी ऐसे आदमी को देखो जिसमें धन-सम्पत्ति और सुन्दरता के मामले में तुमसे ज़्यादा नवाज़ा गया है तो उन लोगों को देखो जिन्हें यह सब तुमसे क म दिया गया है।"

(हदीस : मुस्लिम)

"एक बिस्तर मर्द के लिए, एक बीवी के लिए और एक मेहमान के लिए, चौथा बिस्तर शैतान का होगा।" (हदीस : बुख़ारी)

कुछ भोग-विलास की चीजें जैसे शराब और मर्दों के लिए सोने की चीज़ों और रेशम वग़ैरा को हराम (निषिद्ध) किया गया है। हलाल चीज़ों में भी एहतियात और सन्तुलन की शिक्षा दी गई।

(2) संसाधनों के इस्तेमाल में सन्तुलन और ज़रूरत से ज़्यादा संसाधनों का ग़रीबों में बाँटने का निर्देश

"खाओ और पियो और हद से ज़्यादा ख़र्च न करो कि निस्सन्देह वह (अल्लाह) व्यर्थ ख़र्च करनेवालों को पसन्द नहीं करता।"

(क़ुरआन 7 : 31)

अगर ज़्यादा संसाधन उपलब्ध हों तो क़ुरआन उन्हें, फ़ुज़ूलख़र्ची के बजाय ज़रूरतमन्दों पर ख़र्च करने का हुक्म देता है—

"और नातेदारों को उनका हक़ दो और मुहताज तथा मुसाफ़िर को भी (दो) और (अपना माल) फ़ुज़ूलख़र्ची से मत उड़ाओ। निश्चय ही, फ़ुज़ूलख़र्ची करनेवाले शैतान के भाई हैं, और शैतान अपने रब का बड़ा ही कृतघ्न है।" (क़ुरआन 17 : 26, 27)

"और आपसे यह भी पूछते हैं कि क्या कुछ ख़र्च करें? कह दें : जो ज़रूरत से ज़्यादा है (ख़र्च करो)।" (क़ुरआन 2 : 219)

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा—

"शैतानों के कुछ ऊँट होते हैं और कुछ मकान भी। शैतानों के

ऊँटों को मैंने देखा है कि तुममें से एक आदमी कुछ सवारहीन (बेसवारी के) ऊँटों को लेकर निकलता है, जिन्हें उसने खिला-खिलाकर मोटा कर दिया है और उनमें से किसी ऊँट पर न खुद सवार होता है और न अपने भाई को सवार करता है।" (हदीस : अबू-दाऊद)

(3) चीज़ों को बर्बाद करने से सख़्ती से मना किया गया है

"और जब वह (आपसे) फिर जाता है तो ज़मीन में (हर संभव) भाग-दौड़ करता है, ताकि उसमें बिगाड़ पैदा करे और खेतियाँ और जानें तबाह कर दे, और अल्लाह बिगाड़ को पसन्द नहीं करता।" (क़ुरआन 2 : 205)

"नबी *(सल्ल॰)* तर्क-वितर्क करने, बहुत ज़्यादा सवाल करने, माल को बर्बाद करने, खुद न देने और दूसरों से माँगने, माँ की नाफ़रमानी करने, और लड़कियों को ज़िन्दा दफ़नाने (गाड़ने) से मना करते थे।" (हदीस : बुख़ारी)

हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने इस्लामी फ़ौजों के सिपहसालारों को निर्देश दिया था–

"मैं तुम्हें दस बातों की ताकीद करता हूँ–किसी फलदार पेड़ को न काटना, किसी आबाद ज़मीन को वीरान न करना, किसी बकरी या ऊँट को भोजन की ज़रूरत के बिना ज़ब्ह न करना, शहद की मक्खियों को न जलाना और न उन्हें तितर-बितर करना।" (हदीस : मुवत्ता-ए-इमाम मालिक)

(4) सारी सृष्टि को अल्लाह का परिवार कहा गया और जानदारों को नुक़सान पहुँचाने से मना किया गया

जानवर, पशु-पक्षी, वनस्पति, कीड़े-मकोड़े सब अल्लाह का कुटुम्ब हैं। उनकी सुरक्षा हमारी ज़िम्मेदारी है–

"सारी सृष्टि अल्लाह का कुटुम्ब है और अल्लाह को वह बहुत ही प्रिय है जो उसके कुटुम्ब के लिए फ़ायदेमन्द हो।" (हदीस : मिश्कात)

"अल्लाह के रसूल *(सल्ल॰)* ने किसी जानदार को (अकारण) निशाना बनानेवाले पर लानत की है।" (हदीस : बुख़ारी, मुस्लिम)

(5) पेड़ों के अकारण काटने से मना किया गया और पेड़-पौधे उगाने की शिक्षा दी गई–

ईशदूत हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा–

"जो किसी बंजर ज़मीन को हरी-भरी बनाएगा, उसे उसका बदला (प्रतिदान) मिलेगा। जो कुछ उस ज़मीन (के पेड़ों आदि की पैदावार) से (इंसान या जानवर, मवेशी या चिड़ियों के ज़रीए) खाया जाएगा, उसके लिए एक सदक़े (दान) का सवाब (पुण्य) मिलेगा।" (हदीस : मुस्नद अहमद)

अल्लाह के आख़िरी रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने ऐसे पेड़ों को काटने से मना किया है जो इंसान या जानवरों के लिए जंगल में छाया का ज़रीआ हो। (हदीस : अबू-दाऊद)

इससे पहले भी उल्लेख किया जा चुका है कि हज़रत अबू-बक्र सिद्दीक़ (रज़ि॰) ने इस्लामी फ़ौजों के सिपहसालारों को निर्देश दिया था–

"मैं तुम्हें दस बातों की सीख देता हूँ–किसी फलदार पेड़ को न काटना, किसी आबाद ज़मीन को वीरान न करना, किसी बकरी या ऊँट को भोजन की ज़रूरत के बिना ज़ब्ह न करना, शहद की मक्खियों को न जलाना और न उन्हें तितर-बितर करना।"

(मुवत्ता-इमाम मालिक)

(6) पानी के इस्तेमाल में सावधानी की शिक्षा दी गई

अल्लाह के नबी हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने पानी के इस्तेमाल में सावधानी से काम लेने की शिक्षा दी है–

"अब्दुल्लाह-बिन-अम्र-बिन-आस (रज़ि॰) कहते हैं कि नबी (सल्ल॰) साद के पास से गुज़रे, जो वुज़ू कर रहे थे (और वुज़ू करते समय कुछ ज़्यादा पानी ख़र्च कर रहे थे)। आप (सल्ल॰) ने कहा कि साद यह फ़ुज़ूलख़र्ची क्या है? उन्होंने कहा कि क्या वुज़ू में भी फ़ुज़ूलख़र्ची होती है। आप (सल्ल॰) ने कहा : हाँ, चाहे तुम बहती नदी के किनारे ही वुज़ू क्यों न कर रहे हो।"

(हदीस : मुस्नद अहमद)

(7) प्राकृतिक संसाधनों पर सबका बराबर का अधिकार

अल्लाह के रसूल हज़रत मुहम्मद (सल्ल॰) ने कहा—

"किसी को भी घास, पानी या आग लेने से न रोको, क्योंकि ये चीज़ें (अनिवार्य) आवश्यकताएँ हैं और (ये) कमज़ोरों का सहारा हैं।" (हदीस : अबू-दाऊद)

"तीन लोगों की तरफ़ क़ियामत (प्रलय) के दिन अल्लाह नज़र उठाकर नहीं देखेगा और उनके लिए दर्दनाक अज़ाब (कठोर यातना) होगा। (उनमें से) एक वह जिसको ज़रूरत से ज़्यादा पानी मिला था और उसने उससे फ़ायदा उठाने से मुफ़ासिरों को वंचित रखा।" (हदीस : बुख़ारी)

"अल्लाह के रसूल (सल्ल॰) ने अतिरिक्त पानी के व्यापार से मना किया है।" (हदीस : मुस्लिम)

इन हदीसों से यह भी मालूम होता है कि पानी की बरबादी और कारोबार की जो शक्लें आज के ज़माने में मौजूद हैं इस्लाम में उसकी कोई गुंजाइश नहीं है।

(8) किसी भी ऐसे काम से मना किया गया है जिससे लोगों को नुक़सान पहुँचता हो—

"नबी (सल्ल॰) ने कहा कि नुक़सान पहुँचाना जाइज़ नहीं, न शुरू में न जवाब में (अर्थात कभी भी नहीं)।" (हदीस : मुवत्ता)

"जो किसी को नुक़सान पहुँचाए, उसको अल्लाह नुक़सान पहुँचाएगा और जो दूसरों को तकलीफ़ पहुँचाए अल्लाह उसको तकलीफ़ पहुँचाएगा।" (हदीस : तिरमिज़ी)

"वह आदमी जन्नत में दाख़िल नहीं हो सकेगा, जिसका पड़ोसी उसके अत्याचारों और अन्यायों से सुरक्षित न हो।" (हदीस : मुस्लिम)

हमारी ज़िम्मेदारियाँ

मुसलमान ज़मीन पर अल्लाह का ख़लीफ़ा (प्रतिनिधि) और विश्व भर के संसाधनों का अमीन (संरक्षक) है। इस हैसियत से पर्यावरण-संकट के ख़िलाफ़ सबसे ताक़तवर आवाज़ मुसलमानों की ओर से ही उठनी चाहिए थी

और मुसलमानों को सही तौर पर पर्यावरण-आन्दोलन का झंडावाहक होना चाहिए था। लेकिन बदक़िस्मती से वे न केवल संकट से ग़ाफ़िल हैं बल्कि पर्यावरण-संकट के पैदा करने में साझी भी हैं। आम मुसलमान इस समस्या से पूरी तरह ग़ाफ़िल हैं। विद्वान, वक्ता, और धार्मिक संस्थाएँ इसे एक धार्मिक और इस्लामी समस्या की हैसियत से पेश करने के लिए तैयार नहीं हैं और इस्लामी देश इस संकट को दूर करने के लिए नेतृत्व की भूमिका निभाने के लिए भी तैयार नहीं।

पिछले कुछ सालों में कुछ जगहों पर विशेषकर पश्चिमी देशों के इस्लामी संगठनों में इस समस्या के प्रति जागरूकता आई है।

इस्लामिक फ़ाउंडेशन फ़ॉर एनवाइरोमेंटल एंड इकॉलोजीकल स्टडीज़ (IFEES), आई एनवाइरो (I Enviro) और लंदन इस्लामिक नेटवर्क फ़ॉर दी एनवाइरोंमेंट जैसे संगठन इस्लामी दृष्टिकोण से पर्यावरण की सुरक्षा के लिए काम कर रहे हैं। कनाडा में इस्लामपसन्द नौजवानों के संगठन 'यंग मुस्लिम' ने 'फ़ैथ ऑफ़ लाइफ़' (Faith of Life) के नाम से एक प्रोजेक्ट इन्हीं उद्देश्यों के लिए शुरू किया है। इसी के तहत वेस्ट डाइवर्ज़न (Waste Diversion) यानी मुसलमान आबादियों और मस्जिदों से कचरे को पर्यावरण की दृष्टि से सही तरीक़ों से रिसाइकिल करने का अभियान शुरू किया गया। ऑर्गनिक इफ़्तार के नाम से ऐसे भोज्य पदार्थों को बढ़ावा देने की कोशिश की जा रही है जो पर्यावरण की दृष्टि से सही हों। हमारे देश में ही केरल में इस्लामपसन्द नौजवानों की संस्था 'सॉलिडेरिटी' (Solidarity) ने कई ऐसी बड़ी योजनाओं को विरोध-प्रदर्शन के द्वारा रोकने में कामयाबी पाई है, जो पर्यावरण के लिए बहुत ही नुक़सानदेह थीं। ये पद-चिह्न (निशानाते-राह) इस बात के सुबूत हैं कि मुसलमान अगर चाहें तो ख़ुदा की भेजी हुई नेमतों के सही इस्तेमाल और उनकी सुरक्षा के लिए बहुत अहम रोल अदा कर सकते हैं और इस भौतिकतावादी और स्वार्थों से भरी दुनिया में पर्यावरण-सुरक्षा का निस्स्वार्थ भाव से बीड़ा अगर कोई उठा सकता है तो वह मुसलमान ही है। इस कार्य के लिए कुछ प्रस्ताव नीचे दिए जा रहे हैं—

(1) हमें जुमे के ख़ुतबों (अभिभाषणों), जलसों, सम्मेलनों और दूसरे जनसंसाधनों से पर्यावरण, उसकी सुरक्षा और पर्यावरण के संबंध में इस्लाम के दृष्टिकोण से मुस्लिम-जनता में जागरूकता लाने के लिए कोशिश करनी चाहिए।

(2) कोशिश करनी चाहिए कि हमारी मस्जिदें, घर, आबादियाँ, गली-मुहल्ले साफ़-सुथरे और हरे-भरे हों और पर्यावरण को नुक़सान पहुँचानेवाले काम वहाँ न हों। इसी तरह घरेलू औरतों (गृहिणियों) के अन्दर पर्यावरण-अनुकूलन को बढ़ानेवाले रसोईघरों, बच्चों और नौजवानों के अन्दर पर्यावरण-हितैषी (माहौल दोस्त) महल्ले, उद्योगपतियों और व्यापारियों के अन्दर पर्यावरण-सम्मत उद्योग-धंधों और ख़रीदारों के अन्दर पर्यावरण के अनुकूल ख़रीदारी की चेतना जगाई जाए।

(3) नौजवानों और नौजवानों के इस्लामी संगठनों को पर्यावरण-सुरक्षा के लिए सहायक संगठन और संस्थाएँ क़ायम करनी चाहिएँ।

(4) पर्यावरण के इस्लामी दृष्टिकोण और इस्लामी जीवन-शैली के बारे में शोध होना चाहिए और लेख और किताबें प्रकाशित होनी चाहिएँ।

(5) पर्यावरण की सुरक्षा के लिए जो अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन होते हैं उनमें हमारे संगठनों को सक्रिय भूमिका निभानी चाहिए और इस्लामी दृष्टि से सही और समुचित प्रस्ताव पारित कराने के लिए कोशिश की जानी चाहिए।

(6) इस बात की ज़रूरत है कि इस्लामी विद्वान 'इस्लामी पर्यावरणशास्त्र' माहौलियाती फ़िक़्ह (Fiqh of Environment) के विकास का प्रयास करें। इस साल इस्लामी फ़िक़्ह अकादमी इंडिया के बुरहानपुर के अधिवेशन में कुछ बातचीत हुई है। ज़रूरत यह है कि यह सिलसिला आगे बढ़े।

सरकारों के सामने हमें निम्नलिखित माँगें रखनी चाहिएँ—

(1) भारत सरकार कोपेनहेगन में पूरी ताक़त और उत्साह के साथ तीसरी दुनिया का नेतृत्व करे और बड़ी शक्तियों को प्रभावकारी पर्यावरण-समझौते के लिए मजबूर करे। क्योटो से आगे बात बढ़नी चाहिए, और क्योटो में तय किए गए लक्ष्यों की पूर्ति के साथ-साथ अन्य बिन्दुओं पर भी और अधिक स्पष्टता से समझौता होना चाहिए।

(2) भोग-विलास को कंट्रोल में रखने के लिए सरकार को क़दम उठाना चाहिए। जैसे पर्यावरण को नुक़सान पहुँचानेवाली चीज़ों (एयरकंडिशनिंग, लग्ज़री कारों इत्यादि) पर टेक्स बढ़ने चाहिएँ। पब्लिक ट्रांसपोर्ट को बढ़ावा देना चाहिए और कारों के अकारण इस्तेमाल को हतोत्साहित करना चाहिए।

(3) विलासिता से सम्बद्ध जो उद्योग-धंधे हवा और पानी को प्रदूषित कर रहे हैं और ग़रीब लोगों की समस्याएँ बढ़ा रहे हैं उनसे इसकी क़ीमत वुसूल की जानी चाहिए। प्रदूषण-कर (Environment-Tex) लगाना चाहिए और इस कर (Tex) की आमदनी से ग़रीब लोगों से सम्बद्ध समस्याएँ हल की जानी चाहिएँ।

(4) ज़िन्दगी की ज़रूरतों और प्रकृति के संसाधनों, विशेषकर पानी के निजीकरण पर तुरन्त रोक लगनी चाहिए। पानी और कोल्ड ड्रिंक्स के उद्योगों को पानी का निर्धारित कोटा (आबादी में पानी की उपलब्धता की दशा को आधार बनाकर) दिया जाना चाहिए।

(5) संरक्षित विकास (Sustainable Development) की अवधारणा को व्यावहारिक रूप देने के लिए प्रभावकारी क़ानून-निर्माण और विश्व-स्तरीय समझौते होने चाहिएँ और इसके मानदंड तय होने चाहिएँ।

(6) ऐसी पॉलिसियाँ बननी चाहिएँ जिससे प्राकृतिक और आर्गेनिक खेती को बढ़ावा मिल सके और जीन-संबंधी परिवर्तन, कॉरपोरेट खेती, रासायनिक खादों और कीटनाशक दवाओं, कृत्रिम हार्मोन्स इत्यादि को कठोरतापूर्वक हतोत्साहित किया जा सके।

O O O

Soucres

1. IPCC, 4th Assesment Report, P-94
2. mindprod.com/environment/kyoto.html
3. IPCC, 'Climate Change 2007 Synthesis Repot' Geneva (2007), P-37.
4. वही, पृ॰ 30
5. WWF, Atlas of the Environment, Prentice Hall Press, 1990, P-93
6. Nick Sterm, Sterm Review on the Economics of Climate Change, Cambrige University Press, Cambrige (2006), P-1
7. वही।
8. Vijaya Gupta, 'Climate Change and Domestic Mitigation Efforts', Econom-Pol. Weekly, Vol-40, No.10, P-981-7
9. Kerala Economic Review 2008, KSPB, Thiruranamthapuram, 2008. P-147.
10. Taylor et.al, 'Effect of Ultraviolet Radiations on Cataract Formation', New England Journal of Medicine. 1988, 319, 429-33.
11. Vaishampayan et.at. 'Cyanobacterial Biofertilizers in Rice Agriculture', The Botanical Review, Oct, 2001
12. देखिए नासा की वेबसाइट : http://02onewatch.gsfc.nasa.gov/
13. UNDP, HDR 2006, P-6,7, and 35.
14. Mande Barlw, 'Water as Commodity, the Wrong Preceptions', The Institute of Food & Devlopment Policy, Summer 2001, Vol.7, No. 3
15. John Taghabue, 'As Multinationals Run the Taps, Anger Rises Over Water for Profit', New York Times, August 26, 2002.
16. Ashish Kothari et. al, 'Environment Background and Perspective@ infochangindia.org'
17. वही।
18. Lamont BB (1995), 'Testing the Effect of Ecosystem Composition Structure on its Functioning', Oikos 74:283-295.
19. Ashish Kothari et. al, 'Environment Background and Perspective@ infochangindia.org'
20. Julitle Jawet "World is facing a Natural" Guardian 2-10-2008.
21. US to opec : produce more oil USA to day 21-01-2008

22. Jaideep Hardikar, 'One Suicide every 8 Hrs', DNA 26-08-2006
23. UNDP, 'Consumption for human devlopment' HRD 1998Overview, P-2
24. US Dept. of Transportation, Federal Highway Admin: Highway Statistics 2003 www.fhwa.dot.gov.
25. World Statistics Handbook 2007-United Nations, Statistics Division.
26. Clark County, 'Solid Waste Management Plan', Washington, Clark County (2008) P-3-11
27. 'United State throw away.....', Canada.com22-08-2008
28. Orange Coast Magazine, Dec-1997, P-57
29. Newyork Times, Andrew Martin, 18-05-2008
30. WorldResourceInstitute@archive.wri.org/pagecfm?id=1284&z=?
31. Christian Aid report (1999) as quoted inglobalissuses.org/print/oaticle/231
32. Report of Energy Watch Group (2007).
33. Saad, Al-Hussainias quoted inaspo-usa.com./archives index.php?option=co._cantents&task=view&id=243&Itemid=91
34. 'US Exit from Kyoto Procol' Hindu Businessline, April 18, 2001.
35. 'Why the earth summit matters', Observer, London, 19-05-2002.
36. Suson Delacourte, 'PM denies climate change'. the star, Torento, 21-12-2006.
37. Tinse Dickinson, 'the Secret campaign of Bush.....', Rolling Stones, 26-08-2008.
38. Christian Aid Report (1999) as quoted in globalissues.org/print/article/231.
39. Washington Post, 21-06-2007, Reuters 30-01-2007.
40. Joel Robert, 'groups say scientists.....', CBS News 30-01-2007.
41. Andrew Rekin, 'Climate Expert say.....', Newyork Times, 29-01-2006
42. Anup Shah:Climate Change & globalwarming intro@globlissues.org
43. Guardian London, 20-09-2006
44. 'Denial and Deception : AChronicle of ExxonMobil's Efforts to Corrupt the Debate on Global Warming', Greenpeace, 2003-08-14